जीवन देवता की साधना आराधना
- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

ईश्वर का प्राणी को सबसे बड़ा उपहार मनुष्य जीवन है। इससे श्रेष्ठ एवं बहुमूल्य सम्पदा ईश्वर के विभूति भण्डार में और कोई है नहीं। शरीर संरचना एवं मन:संस्थान की दृष्टि से मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत आगे है। उसे प्रकृति रहस्यों को खोज निकालने और उनके आधार पर पदार्थ वैभव का मनचाहा उपयोग करने की अद्‌भुत क्षमता मिली है। ज्ञान और विज्ञान के दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से उसकी सत्ता सुसज्जित है । क्रियाशीलता, विचारणा तथा भावना के तन्त्रों में इतनी उत्कृष्टता भरी पड़ी है कि उनके सहारे भौतिक एवं आत्मिक सम्पदाओं का प्रचुर परिमाण में उपार्जन कर सकना उसके बाँये हाथ का खेल है। गृहस्थ आनन्द, आजीविका के सुनिश्चित आधार अन्य किसी प्राणी को उपलब्ध नहीं। ऐसा क्रिया-कौशल और किसी के भाग्य में बदा नहीं है। उपलब्धियों को देखते हुए उसे सृष्टि का मुकुटमणि कहा जाना सर्वथा सार्थक है।

जीवन सत्ता का स्वरूप, लक्ष्य एवं सदुपयोग समझा गया या नहीं, समझने के उपरान्त उत्कर्ष का मार्ग अपनाया गया या नहीं। मार्ग पर उत्साह, पुरुषार्थ सहित चला गया या नहीं? इसी चयन, निर्धारण पर उत्थान-पतन की आधारशिला रखी जाती है। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। अवाँछनीयता अपनाकर पतन के गर्त में गिरने की या उत्कृष्टता का वरण करके उत्कर्ष के चरम लक्ष्य तक जा पहुँचने की उसे पूरी छूट है। कोई परिस्थितियों का रोना रोता रहे और मन:स्थिति को न सुधारे तो उस विडम्बना रचे बैठे प्रमादग्रस्त से कोई क्या कहे?

देवता अनेक हैं, पर तत्काल फलदायक अत्यन्त निकटवर्ती और अनुदान देने के लिए आतुर-आत्मदेव से बढ़कर और कोई नहीं।

जीवन को कल्पवृक्ष कहा गया है। उसकी गरिमा समझने वाले और निर्धारित लक्ष्य के लिए उसे प्रयुक्त करने वाले वह सब कुछ प्राप्त करते हैं, जो पाने योग्य है। अन्य देवताओं की अनुकम्पा संदिग्ध है, पर जीवन देवता की साधना का प्रतिफल सर्वथा असंदिग्ध है। दुःख इसी बात का है कि जीवन का महत्व समझा ही नहीं गया और उसे ऋद्धि-सिद्धियों से सुसम्पन्न बनाने की ओर ध्यान गया ही नहीं। अन्यथा स्थिति वैसी न होती, जैसी कि सामने है।

भूमि की साधना से किसान और माली फसल काटते और उद्यानों को सोना उगलने के लिए विवश करते हैं। विद्या की साधना करने वाले विद्वान् कहलाते और उच्च पदासीन बनते हैं। व्यवसाय की साधना करने वाले धन कुबेर बनते हैं। शरीर साधने वाले बलवान पहलवान अनेकों पर हावी रहते हैं। कला साधना से गायक, अभिनेता, मूर्तिकार, चित्रकार, कवि, साहित्यकार आदि यशस्वी भी बनते हैं और सम्मानित समृद्ध भी। देवताओं की साधना भी जब तब कुछ वरदान अनुदान देती रहती है। इन सबसे बढ़कर जीवन साधना है जो उसके लिए अग्रसर हुआ, सो निहाल हो गया। ढेले की तरह निरर्थक दीखने वाले जीवन को यदि गहराई में उतरकर कुरेदा जा सके तो उसके अन्तराल में ऐसे अगणित परमाणु खचे मिलेंगे, जिनमें से एक-एक का विस्फोट ही धरती को हिला सकता है। उपेक्षा से तो हीरा भी काँच की तरह ठुकराया जाता है। फिर जीवन का स्वरूप और रहस्य न समझने पर, उसकी साधना से विरत रहने पर कोई अभाव दारिद्र्य से, शोक-संताप, पतन-पराभव से घिरा पड़ा रहे तो इसके लिए अन्य किसी को दोष कैसे दिया जाय? जीवन की अवहेलना से बढ़कर पाप इस संसार में और कोई नहीं। अन्य पापी के कर्ता को तत्काल लाभ तो मिल ही जाता है, पर जीवन की उपेक्षा का पातक ऐसा है जिसमें उस छोर से इस छोर तक, आरम्भ से अन्त तक नरक ही नरक सड़ता

देखा जा सकता है। भाग्योदय का एक ही चिन्ह है कि जीवन के साथ जुड़ी हुई महान संभावनाओं को समझा जाय और उसे कषाय-कल्मषों के गर्त से उबार कर परिशोधन, परिष्कार की प्रयोगशाला में भेजा जाय।

सर्प, बन्दर, भालु, शेर आदि भयानक जन्तुओं को सधाकर उपयोगी और कमाऊ बनाया जाता है। असभ्य अनपढ़ और कुसंस्कारी को भी आत्मसाधना की भट्टी में अभिशप्त जीवन को गलाना और श्रेय, सौभाग्य के ढाँचे में ढालना नितान्त सम्भव है। लोग जितना पुरुषार्थ साधन जुटाने, प्रतिपक्षी को हराने में करते हैं, उससे आधा भी यदि अपने आपका परिशोधन, परिमार्जन करने में कर सकें तो प्रतीत होगा कि यह सबमे अधिक बुद्धिमत्ता का, सबसे अधिक सम्पन्नता, सफलता उपार्जन का काम बन पड़ा। व्यक्तित्व एक प्रकार का चुम्बक है, जो अपने स्तर का सम्पर्क, समर्थन, सहयोग प्रचुर परिमाण में स्वत: खींच बुलाता है।

पानी का नीचे ढलना, ढेले का नीचे गिरना स्वाभाविक है, पर ऊँचा उठाने के लिए, आगे बढ़ने के लिए कुछ अतिरिक्त साहस करने, कोई नया मार्ग अपनाने की आवश्यकता पड़ती है। अवांछनीय ढर्रे को तोड़ना और चिन्तन तथा व्यवहार को उत्कृष्टता के साथ जोड़ना ही जीवन साधना के निमित्त किया गया सच्चा पराक्रम एवं तप साधन है। जीवन ही अपना घनिष्ठतम स्नेही सहयोगी है। अन्यान्यों की सेवा सहायता की बात सोचने से पहले देखना होगा कि इस अपने ऊपर सर्वथा आश्रित को सुखी समुन्नत बनाने का प्रयत्न हुआ या नहीं? उत्तरदायित्व निभाया या नहीं? यहाँ यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए-साधन सम्पदा मात्र शरीर यात्रा के काम आती है। जीवन को सुसम्पन्न, समुन्नत बनाने के लिए गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता भर देने वाली विभूतियों का संचय करना पड़ता है।

समृद्धि सम्पादन के दो ही उपाय हैं, एक घाटा देने वाले छिद्रों को रोकना, दूसरा वैभव बढ़ाने वाले उपाय उपचारों को अपनाना। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक क्षेत्रों में लोग दिवालिया होते और समुन्नत बनते देखे जाते हैं। उनमें निमित्त कारण इन्हीं दो अवलम्बनों को अपनाने, न अपनाने की सूझबूझ काम करती है ।

जीवन साधना में मनन और चिन्तन को, निदिध्यासन को आवश्यक माना गया है। हर दिन सूर्योदय से पूर्व या सूर्यास्त के बाद- जब चित्त शान्त एकान्त हो, तब अपनी अन्तरंग-वहिरंग स्थिति का लेखा-जोखा लेना चाहिए और भूलों को सुधारना, कमियों को पूरा करने तथा भावी प्रगति के लिए जो कदम उठाने आवश्यक हैं, उनका दूरगामी एवं सामयिक निर्धारण करना चाहिए। निर्धारण ऐसा होना चाहिए जो वर्त्तमान स्थिति में बिना समय गँवाये कार्यान्वित हो सके। [1] आत्मचिन्तन [2] आत्मसमीक्षा [3] आत्मसुधार [4] आत्मविकास, यह चार चरण, चारपाई के चार पायों की तरह, कमरे की चार दीवारों की तरह अनिवार्य रूप से आवश्यक माने गये हैं। आमतौर से अपने दोष-दुर्गुण समझ में न आने देने वाली पक्षपाती धारणा हर किसी पर चढ़ी रहती है। निष्पक्ष पर्यवेक्षक की दृष्टि अपनाकर गौरवास्पद व्यक्तित्व को सामने रखते हुए उसके साथ तुलना करने पर ही यह जाना जा सकता है कि इन दिनों अपनी अन्तरंग और बहिरंग स्थिति में किन भूलों और अभावों का दौर है। निदान के उपरान्त ही उपचार बन पड़ता है। न केवल भूलें ढूँढ़ते रहना चाहिए, वरन् उनके सुधार का उपाय भी खोजना चाहिए। यह मनन पक्ष हुआ।

चिन्तन में दो बातें आती हैं- परिमार्जन और परिष्कार; पथ्य और औषधि। व्यक्तित्व को पवित्र प्रखर बनाने वाली सत्प्रवृत्तियों को कैसे अपनाया जाय? वर्तमान स्थिति को देखते हुए इस सन्दर्भ में नया

कदम उठाया जाय। इसका निर्धारण ही नहीं, उसे अपनाने का तत्परता पूर्वक प्रयास भी अविलम्ब चलना चाहिए। गुण, कर्म, स्वभाव में शालीनता और प्रतिभा के दोनों उपायों का नियोजन रहना चाहिए। आत्मनिर्माण का यही रचनात्मक उपाय है। इसके उपरान्त चौथा चरण यह है कि जो उपलब्ध है, उसे किस प्रयोजन के लिए किस अनुपात में, कहाँ लगाया जाय ? उपलब्धियों का महत्व तभी है जब वे सत्प्रयोजन में लग सकें, अन्यथा दुरुपयोग अपव्यय ही चलता रहे तो सम्पन्नता दरिद्रता से भी महँगी पड़ती है। आत्मविकास का अर्थ है अपना दायरा बड़ा करना। दायरा बड़ा करना अर्थात् संकीर्ण स्वार्थपरता के, लोभ-मोह के भव बन्धनों को शिथिल करते हुए समष्टि के साथ अपने आपको जोड़ना। उस दृष्टिकोण को अपनाने पर वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना उमँगती है और असीम के साथ जुड़ने को जी मचलता है। दूसरों का दु:ख बाँटने और सुख बँटाने का आत्मभाव जब विस्तृत होगा तो उसका उपयोग लोकमंगल के कार्यों के लिये समयदान अंशदान के रूप में प्रस्तुत किये बिना चैन पड़ेगा ही नहीं।

मनन चिन्तन के निदिध्यासन को यदि नियमित रूप से गम्भीरता पूर्वक करते रहा जाय तो परिशोधन और परिष्कार के दोनों कदम उठते रहेंगे। परिस्थिति के अनुसार क्रमबद्ध कदम उठते रहेंगे और पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचाने वाला उपक्रम सुनिश्चित रूप से बनता रहेगा।

यहाँ एक बात और समझने की है कि मनुष्य पूर्ण से उत्पन्न होने के कारण पूर्ण ही है। जन्मजात रूप से उपलब्ध विभूतियों का दुरुपयोग-अपव्यय ही एकमात्र वह कारण है, जिसके कारण कामधेनु का दूध छलनी में दुहने पर जमीन पर गिरता, कपड़े चिकने करता और खेद पश्चाताप का निमित्त कारण बनता है। इस दुष्प्रवृत्ति को असंयम कहते हैं। इसे रोक देने की दूरदर्शिता एवं साहसिकता को

तपश्चर्या कहते हैं। तप से ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ उपलब्ध होने की बात सर्वविदित है।

परमात्मा अदृश्य है। आत्मा का भी कोई दृश्य स्वरूप नहीं। सृष्टा ने जीवन उपहार के साथ-साथ तीन ऐसे साधन भी दिये हैं जिनको मण्डी से भुनाकर कुछ भी खरीदा जा सकता है। (1) समय (2) चिन्तन (3) पराक्रम की क्षमताएँ सभी को उपलब्ध हैं। इनके बदले हर स्तर के साधन खरीदे जा सकते हैं। प्रश्न इतना ही है कि इनका उपयोग कौन कितनी समझदारी के साथ करता है। बुद्धिमानी की परीक्षा किसी की सम्पन्नता या सफलता नहीं है। वह तो अनीति पूर्वक तथा भाग्य विधान के सहारे भी उपलब्ध हो सकती है। समझदारी खर्च करने में है। किसी की विवेकयुक्त दूरदर्शिता परखनी हो तो देखना पड़ेगा कि वह उपलब्धियों का खर्च किस प्रयोजन के लिए किस प्रकार करता है।

संयमशील ही सच्ची सम्पदा और एवं समर्थता उपर्जित करते हैं। चारों विभूतियों के सम्बन्ध में हर विचारशील को संयमी होना चाहिए। समय का एक क्षण भी निरर्थक नहीं जाने देना चाहिए। दिनचर्या बनानी ही चाहिए। आलस्य प्रमाद में एक क्षण का भी अपव्यय नहीं होना चाहिए। हर साँस को हीरे मोतियों से बढ़कर मूल्यवान मानना चाहिए और कार्य पद्धति अपनाकर उसमें तत्पर-तन्मय रहना चाहिए। विश्राम आलस्य का प्रतीक न बने, उसके लिए स्थान तो रहे, पर ऐसा न हो की टालटुल, अनख, आलस में समय गुजरता रहे। रावण ने काल पाटी से बाँधकर सफलताएँ अर्जित की थी। वही मार्ग हर विवेकवान को अपनाना पड़ा है। उनने समय का एक क्षण भी बर्बाद नहीं होने दिया। योजनाबद्ध रूप से व्यस्त दिनचर्या बनाकर उसका सदुपयोग किया है। प्रगति के आकांक्षी हर व्यक्ति को यही करना चाहिए।

समय का सदुपयोग पराक्रम के सहारे बन पड़ता है। पराक्रम का अर्थ है-तत्परता और तन्मयता। तत्परता अर्थात उत्साह भरा परिश्रम। तन्मयता अर्थात् रुचि पूर्वक मनोयोग। दोनों का संयोग जहाँ भी होगा चमत्कारी प्रतिफल हस्तगत होंगे। पसीने में लक्ष्मी निवास करती है। व्यस्तता से ही आरोग्य और मनोबल स्थिर रहता है। 'आलस्य और दारिद्र्य अभिन्न मित्र बनकर साथ-साथ रहते हैं' जैसे सूत्रों को सदा स्मरण रखना चाहिए। हाथ में लिये कामों को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर उसे श्रेष्ठतम स्तर का बनाने के लिए अपनी समूची प्रतिभा, कुशलता का नियोजन करना चाहिए। जो समय और श्रम की संगति बिठा लेगा, उसे कुशल व्यवस्थापकों की तरह हर क्षेत्र में श्रेय सम्मान मिलेगा। जिसका समय आलस्य से और मस्तिष्क प्रमाद से घिरा रहेगा, वह पतन पराभव के गर्त में गिरेगा। पिछड़ी और दुर्गतिग्रस्त परिस्थितियों से जकड़ा रहेगा। इसलिए पराक्रम में व्यस्तता का नियोजन रहना ही चाहिए।

तीसरा वैभव है-चिन्तन। शरीर काम करता है किन्तु उसमें रस न लिया जाय। बेगार भुगती जाय तो उसमें मनोयोग न लगेगा। मात्र शरीर काम करता रहेगा। ऐसी दशा में खाली दिमाग शैतान की दुकान बने बिना न रहेगा। विचार ही कर्म की पूर्व भूमिका बनाते हैं। उन्हीं का स्तर उत्थान-पतन के लिए उत्तरदायी होता है। विचार दीखते नहीं, किन्तु वस्तुतः वे ही सौभाग्य और दुर्भाग्य की दिशाधारा का नियोजन करते हैं। विचारों को दिशाधारा देना ही वह बहुचर्चित मनोनिग्रह है, जिसे एकाग्रता कहा जाता है और जिसका दैवी वरदान जैसा माहात्म्य बताया जाता है।

विचारों को आवारा कुत्ते की तरह जहाँ-तहाँ झूठे पत्ते चाटते फिरने की, अनगढ़ विचारों को कीचड़ में लोटते रहने की छूट नहीं देनी चाहिए। उन्हें सृजनात्मक सज्जनोचित चिन्तन का अभ्यास कराना

चाहिए। अवांछनीय कल्पना करते रहने पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए। बुरे बिचार मस्तिष्क में प्रवेश करते ही उनसे मल्ल युद्ध करने के लिए प्रतिपक्षी सद्विचारों को जुटा देना चाहिए। काँटे से काँटा निकाला जाता है और अवांछनीय विचारों को उत्कृष्टता आदर्शवादिता की मान्यताओं को उभार कर निरस्त करना चाहिए। चिन्तन के लिए विषयों का पूर्व निर्धारण हो। वैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं महापुरुषों की तरह अपना चिन्तन निरन्तर अभीष्ट प्रयोजनों के लिए सीमित एवं सुनिश्चित रहना चाहिए।

चौथी सम्पदा है-धन। यह है तो पराक्रम की उपलब्धि, पर उसे भी ईश्वर प्रदत्त समय, पराक्रम और चिन्तन की ईश्वरीय सम्पदा के बदले खरीदी हुई विभूति मानना चाहिए। नीति पूर्वक कमाया जाय और सत्प्रयोजनों में खर्च किया जाय, यही है सच्ची और समझदारी की अर्थनीति। धन को अपने परिवार एवं समाज में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने में खर्च करना चाहिए। दुर्व्यसनों में एक छटाँक भी खर्च न होने देने का नियन्त्रण बरता जा सके, तो असंख्यों दुर्व्यसनों और अनाचारों से सहज ही छुटकारा मिल सकता है। वजट बनाकर खर्च किया जाय, अपव्यय को पास न फटकने दिया जाय, तो थोड़े से धन से भी अपनी तथा परिवार की सर्वतोमुखी प्रगति के अनेक रास्ते खुल सकते हैं। समय, श्रम, चिन्तन की ही तरह अर्थ साधनों का भी संयम बरतना चाहिए। स्मरण रहे संयम तप है। व्यावहारिक जीवन में उपरोक्त चार सम्पदाओं का श्रेष्ठतम सदुपयोग करने के लिए उन्हें अपव्यय दुरुपयोग से बचाने की सावधानी बरती जानी चाहिए है। यही सच्ची तपश्चर्या, जीवन साधना है।

***

-गायत्री तीर्थ शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार